प्रवचन-१० गाथा-५ से ७ गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ल १४, दिनांक १८-०६-१९७०

अब कहते हैं कि जो तप भी करते हैं... तप अर्थात् मुनिपना पालन करते हैं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (पालन करते हैं) परन्तु **सम्यक्त्वरहित होते हैं उन्हें स्वरूप का लाभ नहीं होता –** आत्मा के स्वरूप का अनुभव, स्वरूप का लाभ नहीं तो इस तप की क्रिया से भी आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। अनन्त बार किया है। आता है न?

सम्मत्तविरहिया णं सुठ्ठू वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं।।५।।

***अर्थ* – जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं,...** शुद्ध जैनदर्शन ऐसा निर्ग्रन्थपना, उसकी अन्तर में स्वसन्मुख की श्रद्धा का जहाँ अभाव है, समकितरहित है, वह भले **सुष्ठु अर्थात् भलीभांति उग्र तप का आचरण करते हैं,...** जैन सम्प्रदाय में रहकर, दिगम्बर सम्प्रदाय में रहकर। सुष्ठु कहा है न? उसकी तो बात क्या, परन्तु जैन सम्प्रदाय में रहकर उसका आचरण—पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण बराबर (पालन) करे, निरतिचार ऐसे व्रत-तप को पालन करे, **उग्र तप का आचरण करते हैं,...** महीने-महीने खमण के अपवास, छह-छह महीने के अपवास करे, ऐसी क्रिया करे तो भी **वे बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप है, उसका लाभ प्राप्त नहीं करते;...** यह क्रिया तो विकल्प है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप है... देखो! भगवान आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है, कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसी जो पर्याय है, उसका पिण्ड स्वयं आत्मस्वरूप है। ऐसे विकल्प की इतनी हजार, लाख, अनन्त बार क्रिया करे तो भी वह आत्मा के स्वरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र को (प्राप्त नहीं कर सकता)। बोधि शब्द है न? तीनों इकट्ठे लिये **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप...** ऐसा। आत्मा यथार्थ वस्तु कहें तो सम्यग्दर्शन की पर्याय श्रद्धागुण में अनन्त पड़ी है। ज्ञान में सम्यग्ज्ञान की पर्याय अनन्त है। चारित्रगुण में शान्ति, स्थिरता आदि की पर्याय अनन्त है। ऐसा जो निजस्वरूप, उसमें से प्राप्त हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति, उसमें से हुई, वह ऐसे क्रियाकाण्ड से नहीं होते। वह साधन है न, साधन है न—ऐसा कहते हैं न?

पहले वे आवे न ? इनकार करते हैं। पहले ऐसा साधन अनन्त बार किया तो भी कुछ साध्य तो हुआ नहीं।

मुमुक्षु : आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो होता है तो उसे व्यवहार साधन का उपचार दिया जाता है। निश्चयस्वरूप का साधन शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, चैतन्य का ज्ञान और चैतन्य की लीनता - रमणता ऐसी प्रगट करे तो उसे ऐसे विकल्प हों, उन्हें व्यवहारसाधन का आरोप उपचार से करते हैं। (बाकी) साधन-फाधन है ही नहीं। सेठी ! कथन है या नहीं इसमें ? हजारों, करोड़ वर्ष से... उसमें भी ऐसा आता है। अज्ञानी चाहे जितने वर्ष करे तो भी ज्ञानी... अन्तर्मुहूर्त में उसे (कर्म) कटते हैं। आता है न ? उसमें से उल्टा अर्थ करते हैं। इतना भी खिरता है न ! इसलिए वह ज्ञानी है, ऐसा। यह तो तीन गुप्ति सहित की स्थिरतावाला है, इतना कहीं वह नहीं खिरा सकता, ऐसा (कहा है), ऐसा अर्थ करते हैं न ?

कहते हैं करोड़-अरबों वर्ष तक, अरे... ! अनन्त भव तक। अनन्त मनुष्यपने के भव में मुनिपना ले, भले अनन्त काल में, उसमें भी अनन्त काल में मनुष्यपने में बाहर निकले। समझ में आया ? और वह भी सुष्ठु-बराबर, ऐसे निरतिचार। कपट से जगत को दिखाने के लिये नहीं। इसलिए सुष्ठु शब्द प्रयोग किया है। जैन सम्प्रदाय में दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म कर इसे अनन्त काल में भले मिले परन्तु अनन्त बार ऐसी पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, ऐसी क्रिया अनन्त बार करे तो भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपना निज स्वरूप (प्राप्त नहीं कर सकता)। क्योंकि राग तो परस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वे कहते हैं व्यवहार साधन है, व्यवहार साधन है। निमित्त अकिंचित्कर माने, वे जैनदर्शन के शत्रु हैं, ऐसा आया है। निमित्त अकिंचित्कर माने...

आचार्य कहते हैं कि घड़ा बनाने में हम कुम्हार को कुछ नहीं देखते। मिट्टी से घड़ा होता है, निमित्त से नहीं होता—ऐसा हम देखते हैं, ऐसा तो कहते हैं। (कुम्हार से घड़ा होता है, ऐसा) नहीं देखते, हम तो मिट्टी से घड़ा होता है, ऐसा देखते हैं। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उत्पन्न... (समयसार) ३७२ गाथा, ८६वीं गाथा। लो न, प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का उत्पाद हम पर से नहीं देखते। तीन काल में उत्पन्न नहीं होती। अपनी पर्याय, प्रत्येक द्रव्य की।

दृष्टान्त दिया है। समय-समय की प्रत्येक द्रव्य की पर्याय पर से उत्पन्न होती है, ऐसा हम नहीं देखते। अपने से उत्पन्न होती है, इसमें क्या बाकी रखा? आहाहा!

कहाँ से निकलकर आया? वनस्पति में से निकलकर जैन... अनन्त काल में मनुष्य होता है। उसमें भी कहते हैं कि किसी-किसी समय ऐसा चारित्र अर्थात् पंच महाव्रत आदि ले, तो भी अनन्त बार इसने ऐसा किया है, तथापि उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप... चारित्रमय अर्थात् अपने निज स्वरूप का आश्रय और उसकी जो परिणति, **उसका लाभ प्राप्त नहीं करते;...** ऐसे क्रियाकाण्ड अनन्त बार करे तो भी स्वरूप के आश्रय के लाभ की प्राप्ति नहीं होती, ऐसा इसमें कहा है। भेद का आया न? भेद साध्य-साधक। उसमें भी यह आया। राग साधन भेद है और साध्य निर्मल शुद्ध पूर्ण, यह बात ही मिथ्या है। इससे नहीं मिलता अनन्त बार, कहते हैं। आहाहा!

अरे! मुश्किल से निकला। निगोद से एकेन्द्रिय से। वापस जहाँ जन्म लिया और जिस धर्म की बाह्य प्रवृत्ति में आया, उसे कुल निभाने के लिये वहाँ आगे रच-पच गया, परन्तु कहते हैं कि ऐसी क्रिया तो अनन्त बार (की है)। मनुष्यपना बहुत काल में मिलता है। उसमें ऐसा चारित्र ऐसे व्रतादि व्यवहार, वह भी बहुत काल में चारित्र लिया। कहीं सबको ऐसा चारित्र होता है? ऐसे-ऐसे अनन्त काल में ऐसे व्रतादि लिये। बाहर का ब्रह्मचर्य पालन किया, परन्तु अन्दर ब्रह्मस्वरूप आत्मा के स्वरूप का लाभ नहीं हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया? दिशा बदलने की बात है न! पंच महाव्रत, अट्ठाईस (मूलगुण पालना), वह तो पर के लक्ष्यवाली दशा है। दिशा भी विदिशा है। पूरी बात में ही अन्तर है। देखो! यह दर्शन-सम्यग्दर्शन की महिमा! आहाहा!

यदि हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें,... अर्थात् कि अनन्त काल ऐसा तप करे, ऐसा। **तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती।** परन्तु जो साधन नहीं है, उससे प्राप्ति कैसे होगी? साधन तो सवेरे आया था न? चैतन्यवस्तु भगवान आनन्दस्वरूप की पर्याय में प्राप्ति, वह साधन है। वह पर्याय निर्मल, वह साधन है। सवेरे आया था न? संसिद्धि, सिद्धि, राध। इन साधन से तो अनन्त भव किये, कहते हैं। आहाहा! मनुष्यपना बहुत काल

में मिला, ऐसे अनन्त, उसमें बहुत काल में पंच महाव्रत लिये, ऐसे वापस अनन्त। समझ में आया? तो भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय ऐसा अपना निजस्वरूप, उसके लाभ की प्राप्ति उनके द्वारा तो नहीं हुई।

यहाँ गाथा में दो स्थानों पर 'णं' शब्द है,... दो जगह आया है न **'णं' चरंता णं सम्मत्तविरहिया णं 'चरंता णं'** 'णं' आया है न? संस्कृत में... **उसका अर्थ वाक्य का अलंकार है।** यह वाक्य का अलंकार है। यह शब्द का अलंकार है।

***भावार्थ* – सम्यक्त्व के बिना हजार कोटि वर्ष तप करने पर भी...** हजार-करोड़ वर्ष तप करे तो भी **मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती।** समझ में आया? ... यह तो साधारण है। .... 'जो पुरुष समकित से रहित है, भली प्रकार हजार, कोटि वर्ष तक भी कठिन तपस्या करे तो भी उन्हें रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता।' इतना। समकित बिना हजार, करोड़ वर्ष तक करे, परन्तु जो वस्तु का स्वरूप ही नहीं है, उसके द्वारा करे तो उसमें वस्तु की प्राप्ति कहाँ से होगी? ऐसा कहते हैं। ये क्रियाकाण्ड के शुभभाव वस्तु का स्वरूप ही नहीं है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वस्तु के स्वरूप में पड़े हैं। समझ में आया? आहाहा! यह कहाँ उसमें है? यह तो व्यर्थ का विकल्प खड़ा करके सब करता है। उसमें से कहाँ से प्राप्त हो? समझ में आया?

मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। मोक्षमार्ग। **यहाँ हजार कोटि कहने का तात्पर्य उतने ही वर्ष नहीं समझना, किन्तु काल का बहुतपना बतलाया है।** यह तो काल का बहुतपना बतलाया है। यह जरा पीछे का शब्द बराबर नहीं मिलता। पण्डितजी मिला नहीं सकते। हम तो, हमारे शब्द का ख्याल नहीं है।

तप मनुष्य पर्याय में ही होता है, और मनुष्यकाल भी थोड़ा है,... मनुष्यकाल थोड़ा और तपस्या बहुत बार की, ऐसे मनुष्यपने में भी **इसलिए तप के तात्पर्य से यह वर्ष भी बहुत कम कहे हैं।** ऐसा कुछ है परन्तु बहुत मेल नहीं खाता। तुम तो इसमें मिला दो। ऐई! मनुष्यपना बहुत काल में मिलता, तो भी दूसरे की अपेक्षा से थोड़ा है और उसमें भी अनन्त-अनन्त बार ऐसा करे तो भी आत्मा को लाभ नहीं मिलता। बहुत भव तो दूसरे में जाते हैं। मनुष्यपने का काल थोड़ा। मुश्किल से मनुष्यपना बहुत काल में मिलता है और

वह भी मनुष्य... ऐसा का ऐसा अनन्त बार करे तो भी स्व के आश्रय की दृष्टि बिना इसे इन तीन का लाभ—दर्शन-ज्ञान-चारित्र (का लाभ) नहीं होता। लो!

गाथा-६

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र, तप को निष्फल कहा है। अब सम्यक्त्व सहित सभी प्रवृत्ति सफल है – ऐसा कहते हैं –

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण।।६।।

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे।
कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण।।६।।

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल वीरज सदा वर्धित रहें।
कलि कलुष पाप विहीन वे अति शीघ्र वर ज्ञानी बनें।।६।।

अर्थ **– जो पुरुष सम्यक्त्वज्ञान, दर्शन, बल, वीर्य से वर्द्धमान हैं तथा कलिकलुषपाप अर्थात् इस पञ्चमकाल के मलिन पाप से रहित हैं, वे सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।**

भावार्थ **– इस पंचमकाल में जड़-वक्र जीवों के निमित्त से यथार्थ मार्ग अपभ्रंश हुआ है। उसकी वासना से जो जीव रहित हुए वे यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर तथा अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से वर्द्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं, वे अल्पकाल में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।।६।।**

गाथा-६ पर प्रवचन

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र, तप को निष्फल कहा है। अभी तक दोनों को निष्फल कहा है। चौथे में, पाँचवें में और तीसरे में। तीसरे में कहा न?

'दंसणमूलो धम्मो' में। **अब सम्यक्त्व सहित सभी प्रवृत्ति सफल है...**

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण।।६।।

***अर्थ* – जो पुरुष...** जो कोई आत्मा **सम्यक्त्वज्ञान, दर्शन, बल, वीर्य से वर्द्धमान हैं...** देखो! जो कोई पुरुष-भगवान आत्मा की प्रतीति-सम्यग्दर्शन, ज्ञान में भी अधिक जाता है, वर्द्धमान है। दर्शन में देखने में भी वर्द्धमान उपयोग है। बल, वीर्य दो लिये हैं। बल, वीर्य। बल-वीर्य मूल तो अन्दर का पुरुषार्थ है। बल-वीर्य का अर्थ अलग-अलग होता है। यह बाहर... **तथा कलिकलुषपाप...** कहते हैं। बल-वीर्य क्या कहा... छठवीं गाथा है न ?.... दर्शन-सत्तावलोकनमात्र ऐसा कहते हैं। निज वीर्यबल वह निज वीर्य... ऐसे बल का अर्थ नीचे गुप्त नहीं रखता... बस, इतना। वीर्य आत्मशक्ति, कहा। वह बल को गुप्त नहीं रखता और आत्मशक्ति को स्फुरित करता है। दोनों को भिन्न किया है। **'वीर्येनात्मशक्त्या पुरुषार्थः वर्धमानाः'** वर्तमान पुरुषार्थ वर्तता है...

जो पुरुष आत्मा का समकित दर्शनशुद्धि, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन-उपयोग, बल, वीर्य जो प्राप्त हुआ है, उसे गुप्त नहीं रखता और वीर्य स्फुरित करता है। अस्ति-नास्ति की है। अस्ति-नास्ति करके दो अर्थ अलग-अलग किये हैं। आत्मवीर्य को स्फुरित करता है। डिग्री वर्द्धमान है। इसने चढ़ती हुई की है। लोग कहते हैं न बाहर में ? पैसे ठीक हों (तो ऐसा कहते हैं), यह तो चढ़ती डिग्री है। नहीं कहते ? संसार में नहीं है तुम्हें ? लड़के अच्छे हों, अमुक हो, पैसा होवे तो चढ़ती डिग्री, उसमें कुछ अच्छी कन्या देने आया हो और इनकार करे तो कहे, यह तो... ऐ.. धीरुभाई! ऐसा कहते हैं या नहीं ? कहते हैं, ऐसा सुना हुआ है लोगों में। चढ़ती... यहाँ तो चढ़ती डिग्री में वृद्धि की, ऐसा कहते हैं। आत्मा के सम्यग्दर्शन की निर्मलता बढ़ावे, ज्ञान की स्वसंवेदन की (निर्मलता बढ़ावे) समझ में आया ? चारित्र का नहीं आया। उसमें यह आया। बल और वीर्य, उसमें चारित्र आया। समझ में आया ? वीर्य को स्फुरित करते हैं, अन्तरस्वरूप में, हों! वीर्य का उघाड़ है, उसे गुप्त नहीं रखता। यह चारित्र इसमें आ गया। ऐसा करके वर्धमान है। अन्दर में पुरुषार्थ की, अन्तर द्रव्यस्वभाव की जागृति वर्धमान है।

कलिकलुषपाप... कहते हैं। कलिकलषुपाप **अर्थात् इस पञ्चमकाल के**

मलिन पाप... कलिकाल है न? कलिकाल। कलिकाल कलुषपाप। पंचम काल में मलिन पाप से **पाप से रहित हैं,..** महाअटपटा पंचम काल ऐसा है, देखो न! मिथ्याश्रद्धा का जोर, मिथ्यात्व के भाव का जोर, यहाँ चमत्कार हुआ और अमुक हुआ, ऐसे सब मिथ्यात्व के जोर हैं। **वे सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।** ऐसे जीव जो स्वरूप की अन्तरश्रद्धा, ज्ञान, बल, वीर्य स्फुरित करते हैं, वे पंचम काल के महामिथ्यात्व के आग्रह के पाप से रहित होते हुए। पंचम काल का यह महापाप कहा है। पंचम काल में धर्म दुर्लभ हो पड़ा है। जैन में जन्मे हुए को भी मिथ्यात्व की विपरीतता इतनी कठोर है। ऐसे भाव को छोड़कर **सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।** लो, वरज्ञानी होते हैं, वे केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। पंचम काल में ऐसे मिथ्यात्व आदि के आग्रह का (अभाव करके) और अपने दर्शन, ज्ञान, बल, वीर्य की स्फुरणा से स्वरूप का साधन करते हैं, वे अल्प काल में मोक्ष को प्राप्त करेंगे, लो। समझ में आया? टीकाकार ने यह 'वर' शब्द है न? तीर्थंकर होकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करेंगे, ऐसा करके डाला है। वर बहुत बार डालते हैं। वरज्ञान है न? वरज्ञान। केवलज्ञान तो प्राप्त करेंगे परन्तु तीर्थंकर होकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। संस्कृत टीका में है। डालते हैं, बहुत बार डालते हैं। **वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।**

***भावार्थ* – इस पंचम काल में जड़-वक्र जीवों के...** सत्य को समझने के लिये इतनी विराधना, इतना विरोध (करे) ज्ञानियों की बात में सूक्ष्म में भी... आहाहा! **जड़-वक्र जीवों के निमित्त से यथार्थ मार्ग अपभ्रंश हुआ है।** वास्तविक जैन का मार्ग सम्प्रदाय में (अपभ्रंश हुआ है)। श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापन्थी देखो न! उनमें भी कितने ही अन्तर्भेद अन्दर होंगे। सबने यथार्थमार्ग को अपभ्रंश कर डाला है। उसमें से इस तत्त्व का वास्तविक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बल को प्राप्त करना महादुर्लभ है। समझ में आया?

यह... रास्ते में कहता था, वह विषय चलता था, उसमें साथ में था। हरितकाय थी न? वह कहे, इसके ऊपर पैर रखें तो क्या हो? बहुत दुःख होता है और मर जाते हैं। वनस्पति के जीव (मर जाते हैं)। तब कहे, इसमें से मनुष्य कब हों? मनुष्य तो किसी समय, कोई शुभभाव ऐसा आवे (तो होते हैं) वैसे तो शुभभाव इन्हें क्षण-क्षण में होता है।

शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ (होते हैं) परन्तु ऐसा शुभभाव मनुष्यपने का आवे, तब होते हैं। वह तो महादुर्लभ है। मनुष्यपना (दुर्लभ है)। तब कहे, ऐसा दुर्लभपना मनुष्य के लिये है तो आत्मा का काम कर लेना चाहिए; नहीं तो ऐसा दुर्लभ (भव चला जाएगा)। यहाँ तो तेरे पिता पढ़ने को कहेंगे, फिर विवाह करने को कहेंगे। कैसे करेगा तू? ऐ!

मुमुक्षु : हम तो आत्मा का कल्याण करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : करेंगे! आहाहा! यह वनस्पति नीचे दबती है। अब जिसे अभी जीव है, इसकी इसे खबर नहीं, दूसरे मानें और अन्दर असंख्य पड़े हैं। यह उगती है न रास्ते में? हरितकाय, घास-फूस। कितने जीव हैं! ओहोहो! उसमें से निकलकर मनुष्य होना अनन्त काल में दुर्लभ है। कितने ही तो उसी-उसी में (जन्मते-मरते हैं)। वनस्पति में से निगोद में और निगोद में से प्रत्येक (वनस्पति) में और प्रत्येक में से निगोद में (जाते हैं)। आहाहा! समझ में आया? ढाई पुद्गलपरावर्तन कहा है। एकेन्द्रिय में से निगोद में, निगोद में से प्रत्येक में, ढाई पुद्गलपरावर्तन.. ओहोहो! ढाई पुद्गलपरावर्तन। अकेला निगोद में रहे तो सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर। निगोद में स्थूल और सूक्ष्म, स्थूल और सूक्ष्म में रहे तो अर्द्धपुद्गल (परावर्तन काल) और निगोद तथा प्रत्येक वनस्पति, पृथ्वी आदि में रहे, एकेन्द्रिय आदि में तो ढाई पुद्गल परावर्तन (रहता है)। उसमें आगे जाकर पृथ्वी, जल, असंख्य... उसी और उसी में। वनस्पति और प्रत्येक में, निगोद में, प्रत्येक में। और यह पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में आवे और वहाँ जाए, इसमें आवे और जाए तो असंख्य पुद्गलपरावर्तन (घूमता है) ऐसी कायस्थिति है। असंख्य पुद्गलपरावर्तन एक साथ, हों! कब मनुष्य हो? यहाँ जहाँ आया, वहाँ हो गया। बाहर के सम्हालने में, इस धर्म के नाम से आया वहाँ भी बाहर की जो हमारी मान्यता और हमारे गुरु मिले, उसी और उसी में बराबर है, उसे रखना। ऐसा जीवन व्यर्थ चला गया।

ऐसा तो गया, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पंच महाव्रत को पालन किया। समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण को पालन किया, तथापि आत्मा के अन्तर दर्शन, ज्ञान और चारित्र बिना वह सब निष्फल गया। वे जीव तो अपने स्वरूप का आश्रय लेकर और जिसने पंचम काल के ऐसे यथार्थ मार्ग का अपभ्रंश जो हुआ है, उसे छोड़कर अपने स्वरूप का आराधन करता है, वह तो विरल प्राणी केवलज्ञान को प्राप्त करनेवाला है, ऐसा

कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अटकने के कितने कारण? ओहोहो! सबको छोड़कर। यह पंचम काल की बात चलती है न! कलिकलुष। कलिकाल के कलुष भाव, मिथ्या आग्रह के। बड़े-बड़े मुनि नाम धरावे, आचार्य नाम धरावे। आहाहा! और विपरीत मान्यता के ढ़ेर पोषण करे। ऐसा पंचम काल, कलिकाल है। आहाहा! मनुष्यपने का जीवन हार गये। उसमें से कहते हैं कि उसके भावरहित हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पंचम काल में जड़ वक्र जीव के कारण, बुद्धि थोड़ी और वक्रता बहुत, वापस टेढ़े। स्वयं जहाँ है, उसका बचाव करके अपनी स्थिति को स्थापित करते हैं कि बराबर हमारा मार्ग बराबर है, सही मार्ग है। होवे विपरीत। **अपभ्रंश हुआ है। उसकी वासना से जो जीव रहित हुए...** ऐसी जिन्हें गन्ध नहीं बैठी, ऐसे धर्मात्मा अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा वीर्य को स्फुरित कर जो जीव **यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप...** पहले में यथार्थमार्ग से अपभ्रंश हुए थे, ऐसा कहा था। अब यहाँ (कहा) **यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप...** समकित सहित, श्रद्धानसहित **ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर...** लो, थोड़ा डाला अवश्य, हों! **अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर तथा अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से...** लो, डाला, हों! टीका में से थोड़ा लिया है। अपना आत्मा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और स्व का-आत्मा का ज्ञान और स्व का दर्शन, सत्तावलोकन उपयोग, ऐसा और अपना पराक्रम बल। उसे **न छिपाकर...** अपना पुरुषार्थ है, उसे नहीं छिपाते। करने के काल में तो यह है। उस वीर्य को कैसे छिपावे? प्रमाद कैसे होने दे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त काल में ऐसी योग्यता अन्दर में मिली, अब कहते हैं कि वह वीर्य को कैसे छिपावे?

तथा अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से वर्द्धमान होते हुए... लो, अब रखा। अपना वीर्य, जो शक्ति वर्द्धमान पुरुषार्थ से। स्वसन्मुख का पुरुषार्थ बढ़ाता जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **वर्द्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं, वे अल्प काल में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।** लो, वह जीव पंचम काल को उल्लंघकर ऐसे काल में जाकर अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बनारसीदास को देखो न! मरते हुए बराबर भान था परन्तु जीव कहीं अटका थोड़े काल। निकलते-निकलते देरी लगी। लोग बातें करने लगे। पण्डितजी का जीव कहीं

अटका है ? लोग कहते हैं न कहीं जीव फँसा है, नहीं कहते यहाँ ? कहीं जीव रहा है, कहीं जीव रह गया है, निकलता नहीं है। उनकी भाषा बन्द हो गयी थी और यह वेदन। अन्दर देह छूटने की तैयारी, भाषा नहीं होती। मोह के ज्ञान के... चले बनारसीदास फेर नहीं आवना। ऐसे काल में अब नहीं (आयेंगे)। चले बनारसीदास फेर नहीं आवना। ऐसी स्थिति में अब हमारा अवतार नहीं हो सकेगा। जहाँ देह छूटने में जरा देर लगी, उसे वहाँ ऐसे कुतर्क करते हैं, यह तो कैसा संयोग ? ऐसा कहते हैं। जीव कहीं उलझा लगता है ? उलझा कहाँ ? धूल में ? अब सुन न ! अन्तर में दर्शन है। आहाहा ! समझ में आया ?

अल्प काल में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। परमात्मपद को प्राप्त करेंगे। वह बहुत काल रखा न ? उसके सामने यहाँ थोड़ा काल रखा। लम्बे काल में ऐसे महाव्रत और क्रियाकाण्ड करते हुए वे सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं करते, स्वरूप की प्राप्ति नहीं करते, ऐसा। इस थोड़े काल में अपने केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? छह गाथा हुई।

गाथा-७

अब कहते हैं कि सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह आत्मा को कर्मरज नहीं लगने देता –

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स।।७।।

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्त्तते यस्य।
कर्म वालुकावरणं वद्धमपि नश्यति तस्य।।७।।

सम्यक्त्व जल बहता सदा जिसके हृदय में उसी के।
नहिं कर्म-रज आवरण होता पूर्व बद्ध भि नष्ट ये।।७।।

अर्थ – **जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवर्त्तमान है, उसके कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता तथा पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो वह भी नाश को प्राप्त होता है।**

भावार्थ **– सम्यक्त्वसहित पुरुष को (निरन्तर ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप परिणमन है इसलिए) कर्म के उदय से हुए रागादिक भावों का स्वामित्व नहीं होता, इसलिए कषायों की तीव्र कलुषता से रहित परिणाम उज्ज्वल होते हैं; उसे जल की उपमा है। जैसे – जहाँ निरन्तर जल का प्रवाह बहता है, वहाँ बालू–रेत–रज नहीं लगती; वैसे ही सम्यक्त्वी जीव कर्म के उदय को भोगता हुआ भी कर्म से लिप्त नहीं होता तथा बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा भी तात्पर्य जानना चाहिए कि जिसके हृदय में निरन्तर सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह बहता है, वह सम्यक्त्वी पुरुष इस कलिकाल सम्बन्धी वासना अर्थात् कुदेव–कुशास्त्र–कुगुरु को नमस्कारादिरूप अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता तथा उसके मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का आगामी बंध भी नहीं होता।।७।।**

गाथा-७ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह आत्मा को कर्मरज नहीं लगने देता–... नहीं लगने देता... आहाहा! जहाँ नदी का पूरा हो, वहाँ रज कहाँ चिपके। उसमें दृष्टान्त दिया है। कोरे घड़े का। कोरा घड़ा हो, उसे कहीं रज नहीं चिपटती। कोरा नया घड़ा हो, उसे कहाँ चिपकती है? चिकना हो, तेलवाला हो तो रज चिपकती है। कोरा घड़ा समझते हैं? यह दृष्टान्त उसमें दिया है।

सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह... अर्थात् कहते हैं कि सम्यग्दर्शन का प्रवाह नित्य रहा और उस प्रवाह के परिणमन के कारण आत्मा को कर्मरज **नहीं लगने देता...** उसे कर्म की रज नहीं लगती। देखो! यहाँ अकेले समकित का जोर दिया है। समझ में आया?

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स।।७।।

...बँधे हुए हैं।

अर्थ – जिस पुरुष के हृदय में... पुरुष शब्द से (आशय) आत्मा। जिस किसी आत्मा के हृदय में अर्थात् अन्तर आत्मा में **सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर**

प्रवर्त्तमान है,... सम्यग्दर्शन की श्रद्धा का प्रवाह-परिणमन निरन्तर बहता है। पूर्ण शुद्ध द्रव्य ध्रुव चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसा अन्तर में ज्ञान का भान होकर समकितरूपी जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है। ऐसा है न **'णिच्चं हियए पवट्टए' उसके कर्मरूपी रज-धूल का आवरण...** उस पुरुष को कर्म हुआ, जो बालू-रज का आवरण **नहीं लगता...** उसे बालू नहीं लगती। कोरे घड़े को बालू नहीं चिपकती। इसी प्रकार कोरा-राग की चिकनाहट रहित है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का प्रवाह। **'सलिल'** नदी अन्दर चलती है। उस प्रवाह में राग की चिकनाहट नहीं है, इसलिए उसे कर्म नहीं लगता। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह सम्यग्दर्शन का स्वरूप और उसका यह माहात्म्य है। **कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता...** उसे आवरण नहीं होता।

और **पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो...** ऐसा हुआ न? **'कम्मं वालुयवरणं'** नहीं चिपकती और **'बन्धुच्चिय णासए तस्स'** बँधे हुए कर्मों का नाश होता है। दो बातें की हैं। समझ में आया? **तथा पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो, वह भी नाश को प्राप्त होता है।** वह सब खिरता जाता है। स्वरूप सन्मुख का अनुभव, दृष्टि है (तो) पूर्व का उदय आवे, वह सब खिर जाता है। अब बन्धन नहीं है। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन के नित्य परिणमन के प्रवाह का फल! वह इतना-इतना करे तो कहते हैं, कुछ लाभ नहीं है। पंच महाव्रत (अर्थात्) अपनी जाति से विरुद्ध भाव—विभाव। आहाहा! अहिंसा पालन करे, दया पालन करे, दया वह धर्म की सिद्धि-क्या कहा? सुख की... दया वह सुख की वेलड़ी, दया वह सुख की खान... परन्तु वह दया कौन सी? तो कहते हैं, पर की दया वह सुख की खान। धूल भी नहीं है, सुन न! वह परदया तो राग है। वह राग तो अनन्त बार किया। वे कहें, अनुकम्पा। खरगोश की दया पालन की, वहाँ परितसंसार (किया) - श्वेताम्बर में (ऐसा आता है)। खरगोश... खरगोश है न? खरगोश। खरगोश को हाथी के भव में बचा लिया। परितसंसार... परितसंसार। धूल में भी परितसंसार नहीं होता। वह तो राग है। राग स्वयं संसार है। आहाहा! यह भगवान के शास्त्र के नाम से ऐसी बातें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ तुम सब सुनते थे न! रंगनाथभाई के पास। वे गाँव में

अधिक पैसेवाले कहलाते थे। सबसे (बड़े) पैसेवाले। इन छोटा भाई की अपेक्षा भी अधिक पैसेवाले कहलाते थे। तब आते थे, तब सुनते थे न। उन लोगों के पास पैंतीस-चालीस हजार कहलाते हैं, उनके पास तीस हजार कहते थे। तब सुनी हुई बात है। कोई कहे, वह सुना हो। अपने कहाँ वहाँ गिनने गये थे। खबर है या नहीं? एक घर में रहते थे। खबर है? (संवत्) १९७१ में। पहले वहाँ रहते थे। तुम्हारे घर के अन्दर। वृक्ष के सामने। छाछ लेने आते थे न? छाछ। बाहर खड़े रहे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते। पहला घर। वहाँ तुम रहते थे। यह तो १९७१ की बात है।

यहाँ तो कहते हैं, पर की दया का विकल्प है, वह तो राग है। वह स्वयं संसार है। उससे संसार छूटेगा?

मुमुक्षु : किस भव में?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, हाथी के भव में। वह और दूसरा। वह शान्तिनाथ का भव, वह दूसरे की बात। यह तो एक मेघकुमार की बात आती है। भगवान के निकट दीक्षा ली थी। फिर अन्त में शैय्या मिली। सबके ठोकर खाते हैं, शैय्या में सोते थे। सब गप्प है। ठोकर खावे, वह नींद नहीं आयी।

मुमुक्षु : मुनि को नींद सिद्ध की।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सिद्ध किया। अमुक न हो, इसलिए फिर सवेरे भगवान को यह सब सौंप कर अपने घर चले जाना, ऐसा।... ऐई! मेघा! क्या हुआ? इस हाथी के भव में ऐसी दया पालन कर संसार परित किया।.... की न? यहाँ तुझे...? ऐसा सम्बोधन किया है। ऐई! चिमनभाई! सुना है या नहीं? सुना है न? सुना ही होगा न? क्यों, गुलाबचन्दभाई! सुना है या नहीं सब? अरे...! तू क्या आया? हाथी के भव में तूने संसार परित किया। उसके अर्थ में भी फेरफारवाला दो-पाँच। वे प्राणलाल संसार परित किया नहीं, समकित था, इसलिए परित किया। ऐसा शब्दार्थ है, ऐसा। समझे न? उसका अर्थ वह कहे समकित बिना परित संसार होता नहीं है। अर्थ कहते हैं ऐसा उनका है ही नहीं। तेरापन्थी ये सब अर्थ

करते हैं। समकित बिना संसार परित किया। ये दोनों के अर्थ में वापस अन्तर है। हीरालालजी मारवाड़ी थे न ? उन्होंने शब्दार्थ में से निकाला। 'अलभेण लभेण' समकित का लाभ था, वह तुझे हुआ। इसका अर्थ कि समकित रत्न का लाभ वहाँ उसे नहीं था। ऐसा था। वहाँ भी तूने परित संसार किया तो यह मेरे पास मुनिपना लिया और यह हुआ। एकदम वापस... मुनिपना रखा और फिर जाओ। सब कल्पित बातें रची हैं। पर की दया से संसार कभी टूटता होगा ? यहाँ क्या कहते हैं ?

समकित सलिल प्रवाह द्वारा। यह तो पर की दया का राग है और राग की एकताबुद्धि वह तो मिथ्यात्व है। जाधवजीभाई ! सुना है या नहीं मेघकुमार का ? बहिन ने तो सब बहुत सुना था। स्थानकवासी में सामने थे न ? प्रमुख। ऐसा सब वहाँ होता है। अरे ! वह मार्ग नहीं है। भाई ! सब कल्पित की हुई बातें हैं। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि जिसे अन्दर में ऐसी अनन्त बार क्रिया करने पर भी, शुभभाव की क्रिया दया, दान और व्रत (किये), अन्तर सम्यग्दर्शन बिना उसका एक भव नहीं घटता। समझ में आया ? ऐ... शान्तिभाई ! यह सब किया था या नहीं ? ये भी शास्त्र पढ़ते थे। साधु, साध्वी को वांचन कराते थे। कलकत्ता में।

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे विकल्प से तो पुण्यबन्धन होता है और धर्म माने, राग को मेरा स्वभाव माने, वह तो मिथ्यात्व का पंचम काल का अकेला कलिकलुषपाप है। पण्डितजी ! आहाहा ! साधु को आहार देने से परित संसार होता है... विपाक में है। आहार-पानी देनेवाला मिथ्यादृष्टि हो, लेनेवाला हो समकिती ज्ञानी; उसे आहार-पानी दे तो परित संसार होता है परन्तु परद्रव्य को आहार-पानी दे, उसमें शुभभाव होता है, परित संसार कहाँ से करता था ? पण्डितजी ! स्वद्रव्य के आश्रय बिना परित संसार—संसार घटता नहीं। आहाहा ! इस पंचम काल में ऐसे पके हैं, ऐसा कहते हैं, हों ! उसमें। जैनाभास है न ? दर्शन से भ्रष्ट हुए इस पंचम काल में ऐसे सब भाव करके... उनसे रहित होकर जो समकित का प्रवाह, जिसे दृष्टि में अन्तर में निरन्तर बहता है, (उसे) वर्तमान कर्म का बन्धन नहीं और पूर्व में बाँधे, वे रहते नहीं। समझ में आया ? वस्तु का स्वरूप ऐसा हो, उसमें क्या करना ? उसमें समन्वय किस प्रकार करना ? उसमें भी कुछ है और इसमें भी कुछ है। कहाँ गये, शिवलालभाई ? नहीं आये शिवलालभाई ! ...वे सब पुराने व्यक्ति हैं न। गये हों न अन्दर, उपाश्रय में। आहाहा ! अरे ! यहाँ भाषा क्या है, देखो न !

'**कलिकलुषपावरहिया**' अरे! पंचम काल के ऐसे जैनाभास, उसका आग्रह छोड़कर जिसने आत्मा का ज्ञान और दर्शन प्रगट किया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो न! छठी गाथा में कहा। इस पंचम काल में सब पके हैं न? आहाहा! क्या हो? बापू! इसमें आत्मा का नुकसान है, भाई! तुझे बुरा लगे परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। बाहर के ऐसे शुभभाव तो अनन्त बार किये, तथापि स्व के आश्रय के सम्यग्दर्शन बिना एक भी भव नहीं घटा।

'**सम्मत्तसलिलपवहो**' कहते हैं, जहाँ अन्दर ऐसे आग्रह छूट गये, सम्यक् आत्मा चिदानन्द प्रभु का भान होकर अन्दर में प्रतीति हुई है, ऐसा सम्यग्दर्शन का प्रवाह निरन्तर बहता है।....लिया है। समझ में आया? गिर जाता है न... ऐसी बात यहाँ नहीं ली है। समझ में आया? प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है। आहाहा!...सम्प्रदाय छोड़ने के बाद आये थे न?...

उसके कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता तथा पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो वह भी नाश को प्राप्त होता है।

भावार्थ – **सम्यक्त्वसहित पुरुष को (निरन्तर ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप परिणमन है, इसलिए) कर्म के उदय से हुए रागादिक भावों का स्वामित्व नहीं होता,...** लो, भगवान आत्मा के शुद्धस्वभाव का जहाँ सम्यग्दर्शन अनुभव से प्रगट हुआ, ऐसे समकिती को **कर्म के उदय से हुए रागादिक...** आत्मा में तो राग होने का स्वभाव नहीं है। निमित्त के लक्ष्य से उपाधि का भाव उत्पन्न हुआ। यह आता है न? निमित्त-नैमित्तिक। उपाधि को अनुरूप आता है न? निमित्त उदय को अनुरूप पुण्य-पाप के विकल्प होते हैं, उसका स्वामित्व नहीं है। धर्मी को उसका स्वामित्व नहीं है। आहाहा! धर्मी को स्वामीपना तो शुद्ध चैतन्यद्रव्य, गुण और पर्याय, शुद्ध द्रव्य गुण और पर्याय वह उसका स्व और उसका वह स्वामी। आहाहा! छह खण्ड के राज का स्वामी नहीं, उसने छह खण्ड को नहीं साधा था।

निहालभाई कहते हैं न? वह तो अखण्ड साधता था। चक्रवर्ती ने छहखण्ड साधे हैं न? नहीं; उसने तो अखण्ड आत्मा को साधा है। समझ में आया? भरत चक्रवर्ती इत्यादि समकिती। (छह खण्ड) साधे ही नहीं। वह राग आया है, उसके स्वामी नहीं, फिर वे किसे साधें? आहाहा! छह खण्ड है न! उनके सामने अखण्ड आत्मा (लिया है)।

भगवान आत्मा पूर्ण अखण्ड ध्रुव को आराधा है और उसे उन्होंने सेवन किया है। धर्मी चक्रवर्ती उसके स्वामी हैं। राग के स्वामी नहीं हैं। समझ में आया?

इसलिए कषायों की तीव्र कलुषता से रहित परिणाम उज्ज्वल होते हैं;... लो! इसलिए कलुषता से रहित ऐसे उज्ज्वल परिणाम रहते हैं। राग का स्वामीपना नहीं है इसलिए (रहते हैं)। ऐसा कहते हैं। शुद्ध चैतन्यद्रव्य के गुण, पर्याय का स्वामीपना है, इसलिए परिणाम उज्ज्वल रहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **उसे जल की उपमा है।** उसे जल की उपमा दी है।

जैसे – जहाँ निरन्तर जल का प्रवाह बहता है, वहाँ बालू-रेत-रज नहीं लगती;... पानी का प्रपात गिरता हो ऊपर घड़े पर, वहाँ रज चिपकने कहाँ आवे? **वैसे ही...** तैसे चाहिए। जैसे है उसमें? तैसे चाहिए। नया है? नये में भी चिह्न नहीं रखा? परन्तु सुधारे कौन? जैसे तो पहले आ गया है। **जैसे – जहाँ निरन्तर जल का प्रवाह बहता है, वहाँ बालू-रेत-रज नहीं लगती; वैसे ही सम्यक्त्वी जीव कर्म के उदय को भोगता हुआ भी...** धर्मी कर्म के उदय को जानता होने पर भी। वहाँ भोगे क्या? भोगे तो बाहर दिखे न, लोगों की भाषा है। समकिती जीव कर्म के उदय की सामग्री और उदय, रागादिभाव को भोगने पर भी **कर्म से लिप्त नहीं होता...** भोगता का अर्थ उसे पर्याय में राग होता है, ऐसा कहना वह भोगता है ऐसा कहने में आता है। भोगता नहीं है। जिसका स्वामी नहीं उसे भोगे क्या?

सम्यक्त्वी जीव कर्म के उदय को भोगता हुआ भी कर्म से लिप्त नहीं होता तथा बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा भी तात्पर्य जानना... क्या कहते हैं? देखो! बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा भी भावार्थ जानना। **जिसके हृदय में निरन्तर सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह बहता है, वह सम्यक्त्वी पुरुष इस कलिकाल सम्बन्धी वासना अर्थात् कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु...** देखो, जिसकी अन्तर निर्मल सम्यग्दर्शन श्रद्धा हुई है, उस जीव को समकितरूपी जल प्रवाह बहता है, वहाँ **सम्यक्त्वी पुरुष इस कलिकाल सम्बन्धी वासना अर्थात् कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु को नमस्कारादिरूप अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता...** कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र कल्पित होकर जैन के नाम से आये, उन्हें वह नमस्कार नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? अभी तो हो... हा... हुई है।

समन्वय करो, समन्वय करो। भगवान (महावीर) का २५००वाँ वर्ष आनेवाला है, इसलिए कोई ऐसा बोल निकालना नहीं कि जिसमें सम्प्रदाय में विरोध हो। ऐसा आता है। वस्तु का स्वरूप हो, उसमें दूसरा क्या होगा? समझ में आया? उसमें यह सब वीतराग का मार्ग एक है। नवकार के गिननेवाले तो सब हैं। अरे! भाई! वीतराग को नमता है, वह तो कैसा होता है? अन्दर दृष्टि वीतरागी हुई, उसे वीतराग का आदर होता है, वह वीतराग को व्यवहार से नमता है, (ऐसा) कहा जाता है। वह व्यवहार को नमता है, वह तो राग को नमता है। आहाहा! उसका राग में बहुमान है और वीतराग को भी ऐसा स्वीकार करता है कि उनकी भक्ति करना, उससे लाभ होता है, ऐसा भगवान ने कहा है। वह ऐसा मानता है। भगवान को भी ऐसा माना है। समझ में आया? हमारी भक्ति से तुम्हारा कल्याण होगा, ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा नहीं कहा है, ऐसा माननेवाले प्रसन्न हों। आहाहा!

कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु... ऐसा लिया, देखा? देव-शास्त्र-गुरु तीन—ऐसा आता है न? देव-शास्त्र-गुरु तीन अर्थात् सामने उल्टे में ऐसा डाला कुदेव को नमस्कार, विनय, साधु मानकर आहार-पानी देना इत्यादि इन **अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता...** सेठी! ऐसी जवाबदारी है। जवाबदारी है या वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जवाबदारी नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। उसे - पर का आदर करने का भाव (नहीं होता) मिथ्या गुरु, मिथ्या शास्त्र, कुगुरु और कुदेव। नमस्कार, विनय इत्यादि। **अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता...** ऐसा दोष नहीं करता।

तथा उसके मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का आगामी बंध भी नहीं होता। लो! इसलिए उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का भविष्य में बन्ध पड़े, ऐसा बन्ध नहीं पड़ता। बन्ध पड़ता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। वे साधारण परिणाम निकाल डाले। **मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का आगामी बंध भी नहीं होता।** ऐसा लिया है। पहले साधारण राग कहा परन्तु उसका स्वामी नहीं, इसलिए मिथ्यात्व का बन्ध उसे भविष्य में नहीं है। अस्थिरता का बन्ध, वह बन्ध... बात है। कहो, समझ में आया?

गाथा-८

अब कहते हैं कि जो दर्शनभ्रष्ट हैं तथा ज्ञानचारित्र से भ्रष्ट हैं, वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं, यह अनर्थ है –

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।।८।।

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टाः चारित्रभ्रष्टाः च।
एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं विनाशयंति।।८।।

जो भ्रष्ट-दर्शन ज्ञान-भ्रष्ट चारित्र-भ्रष्ट रहें सदा।
वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट करते अन्य को भी नष्ट हा!।।८।।

अर्थ **– जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा ज्ञान-चारित्र में भी भ्रष्ट हैं, वे पुरुष भ्रष्टों में भी विशेष भ्रष्ट हैं। कई तो दर्शन सहित हैं, किन्तु ज्ञान-चारित्र उनके नहीं है तथा कई अंतरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं तथापि ज्ञान-चारित्र का भलीभांति पालन करते हैं और जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों से भ्रष्ट हैं, वे तो अत्यन्त भ्रष्ट हैं; वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु शेष अर्थात् अपने अतिरिक्त अन्य जनों को भी नष्ट/भ्रष्ट करते हैं।**

भावार्थ **– यहाँ सामान्य वचन है, इसलिए ऐसा भी आशय सूचित करता है कि सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भी भ्रष्ट हैं, वे तो निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं। वे स्वयं भ्रष्ट हैं, उसीप्रकार अन्य लोगों को उपदेशादिक द्वारा भ्रष्ट करते हैं तथा उनकी प्रवृत्ति देखकर लोग स्वयमेव भ्रष्ट होते हैं, इसलिए ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं; उनकी संगति करना भी उचित नहीं है।।८।।**

गाथा-८ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो दर्शनभ्रष्ट हैं तथा ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट हैं,... जो कोई समकित से भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट है। जैनशासन सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ निर्ग्रन्थमार्ग, दिगम्बर मुद्रा, वीतरागभाववाला निर्ग्रन्थ तत्त्व, उससे जो भ्रष्ट हैं,

वे तो ज्ञान और चारित्र सबसे भ्रष्ट हैं। उनका ज्ञान भी सच्चा नहीं होता, उनका चारित्र भी सच्चा नहीं होता। भारी कठिन काम है। **वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं,...** विपरीत श्रद्धा, विपरीत प्ररूपणा करके दूसरे को भी यह लगा दे। यह मार्ग है, ऐसा मार्ग है, पंचम काल में भी ऐसा मार्ग है। चौथे काल की बातें करना पंचम काल में? और ऐसा कहे। पंचम, चौथे की बात ही कहाँ है? यह तो आत्मा की बात है। उसे काल-बाल कहाँ बाधक था? शुद्धोपयोगी की ही बात करते हैं, चौथे काल की, ऐसा कहते हैं। पंचम काल में जो शुभभाव की बात करे, वह तो करते ही नहीं। उससे लाभ होता है, ऐसा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जो कोई दर्शन से भ्रष्ट है, वह ज्ञान, चारित्र से भी भ्रष्ट ही है। उसका ज्ञान भी भ्रष्ट और उसका चारित्र भी झूठा है। **वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं, यह अनर्थ है...** आहाहा! यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)